

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 12: चार आश्रम

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



चार सामाजिक वर्णों के कर्तव्य बताने के पश्चात्, नारद अब जीवन के चार आश्रमों की ओर मुड़ते हैं — ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी। प्रत्येक आत्म-संयम की एक पाठशाला है, और प्रत्येक, सही ढंग से जिया जाए, तो आत्मा को उसी एक लक्ष्य तक ले जाता है: सबके भीतर भगवान् का दर्शन।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

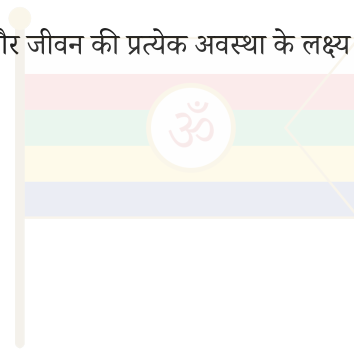
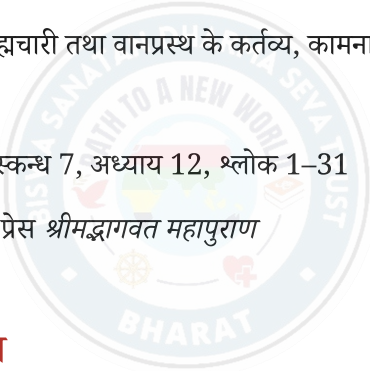
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में वर्णित चार सामाजिक वर्णों के आगे बढ़ते हुए, नारद यहाँ मानव-जीवन के चार आश्रमों की चर्चा करते हैं — प्रत्येक, सही ढंग से जिया जाए, तो एक ही आन्तरिक अनुशासन की पाठशाला बन जाता है: जो भी जीवन कोई जिए, उसके ठीक केन्द्र में भगवान् की उपस्थिति को पहचानना।

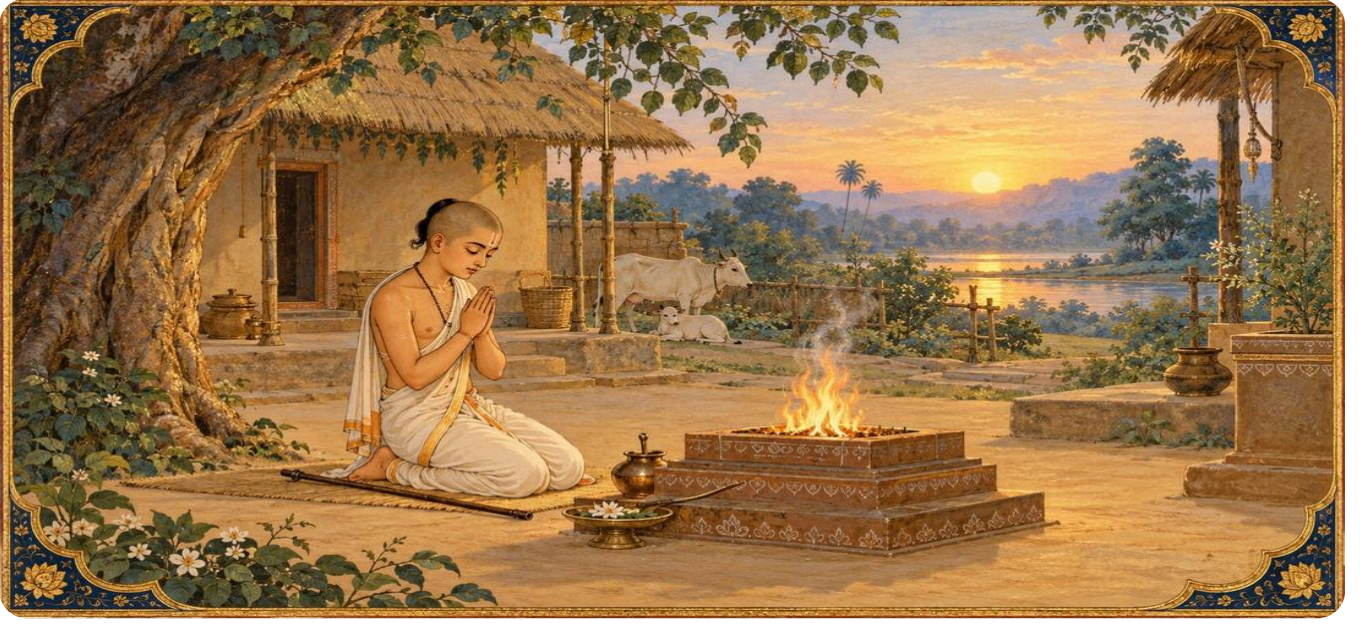
अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 12
- अध्याय-शीर्षक: चार आश्रम, आध्यात्मिक जीवन की अवस्थाएँ
- मुख्य वक्ता: सिद्ध नारद
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर
- मुख्य स्थान: सम्राट युधिष्ठिर की सभा, नारद के प्रवचन के क्रम में
- मुख्य विषय-वस्तु: ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थ के कर्तव्य, कामना का संयम, और जीवन की प्रत्येक अवस्था के लक्ष्य रूप में सबके भीतर भगवान् का दर्शन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 12, श्लोक 1-31
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



ब्रह्मचारी का जीवन

नारद ने ब्रह्मचारी से आरम्भ किया। गुरु के घर में निवास करते हुए, सेवक के समान विनम्र, इन्द्रियाँ वश में तथा हृदय गुरु के प्रति स्नेह से पूर्ण, ब्रह्मचारी प्रत्येक प्रातः तथा सायं पूजा करता है — अपने गुरु, यज्ञाग्नि, सूर्य, तथा देवों के प्रधान भगवान् विष्णु की — एकाग्र मन से पावन गायत्री का मौन जप करते हुए। वह बुलाए जाने पर गुरु से वेद का अध्ययन करता है, अध्ययन के आरम्भ तथा अन्त में सिर से उनके चरणों को छूकर प्रणाम करता है। वह अपने व्रत के सरल चिह्न धारण करता है — यज्ञोपवीत, मृगचर्म, मेखला, दण्ड तथा कमण्डलु — और प्रातः-सायं भिक्षा माँगने जाता है, उसे पहले गुरु को अर्पित करता है और केवल अनुमत भोजन ग्रहण करता है; जिन दिनों अनुमति न हो, वह उपवास करता है। आहार में मित, श्रद्धावान, तथा सक्रिय, वह विपरीत लिंग के साथ केवल उतना ही व्यवहार करता है जितना कर्तव्य कठोरता से अपेक्षित करे।



गुरु के घर में निवास करता ब्रह्मचारी प्रातः तथा सायं यज्ञाग्नि, सूर्य, तथा भगवान् की पूजा करता है, एकाग्र मन से गायत्री का मौन जप करते हुए (SB 7.12.1-5)।

कामना का संयम

फिर नारद ने ब्रह्मचर्य-जीवन के महान संकट के विषय में स्पष्ट कहा: इन्द्रियों का आकर्षण, जो स्वभाव से चंचल हैं और सुसंयमित मन को भी बलपूर्वक हर सकती हैं। व्रतधारी को, उन्होंने सिखाया, विपरीत लिंग की व्यर्थ चर्चा से बचना चाहिए और सब अनावश्यक घनिष्ठता से दूर रहना चाहिए। एक स्मरणीय चित्र से उन्होंने रेखांकित किया कि कितना सावधान रहना चाहिए — कि अग्नि तथा ईंधन को असावधानी से एक साथ न रखा जाए:

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् ।

सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥ ९ ॥

nanv agniḥ pramadā nāma ghr̥ta-kumbha-samaḥ pumān sutām api raho jahyād anyadā yāvad-artha-kṛt

अर्थ: यह एक सत्य है कि स्त्री अग्नि के समान है और पुरुष घृत से भरे घड़े के समान; अतः एकान्त में अपनी पुत्री के साथ भी सतर्क रहना चाहिए, और अन्य समय भी केवल उतना ही संग रखना चाहिए जितना आवश्यक हो। (SB 7.12.9)

जब तक व्यक्ति, आत्म-साक्षात्कार द्वारा, यह सच्चे रूप से न समझ ले कि शरीर तथा इन्द्रियाँ केवल एक क्षणिक आभास हैं, नारद ने समझाया, तब तक द्वैत का भाव — “मैं भोक्ता” तथा “यह भोग्य” का — समाप्त नहीं होता; और उसी द्वैत से आत्मा का समस्त बन्धन प्रवाहित होता है। ये संयम, उन्होंने कहा, केवल ब्रह्मचारी पर नहीं अपितु अपनी-अपनी मात्रा में गृहस्थ तथा संन्यासी पर भी लागू होते हैं।

सबके भीतर भगवान् का दर्शन

वेदों का अध्ययन कर तथा उनका अर्थ ग्रहण कर, और अपने गुरु के आशीर्वाद से, ब्रह्मचारी तब जीवन की उस अवस्था में प्रवेश कर सकता है जो उसके स्वभाव के अनुकूल हो — गृहस्थ बनना, वन को जाना, संसार त्यागकर संन्यासी रूप में विचरण करना, या आजीवन ब्रह्मचारी रहना। किन्तु वह जो भी मार्ग चुने, नारद ने एक ऐसा अभ्यास दिया जो उन सबको पवित्र करता है: भगवान् विष्णु को, जो इन्द्रियों से परे हैं, जहाँ भी हम दृष्टि डालें वहाँ अन्तरंग रूप से विद्यमान पहचानना — उस ज्वाला में जिसे हम प्रज्वलित रखते हैं, उस गुरु में जिसकी हम सेवा करते हैं, अपने ही हृदय में, तथा हर जीवित प्राणी में — वही अन्तर्यामी, जो वस्तुतः इनमें से किसी से भी कभी पृथक् नहीं रहे।

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ।

भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥ १५ ॥

agnau gurāv ātmani ca sarva-bhūteṣv adhoḥśajam bhūtaiḥ sva-dhāmabhiḥ paśyed apraviṣṭam praviṣṭavat

अर्थ: इन्द्रियातीत भगवान् को यज्ञाग्नि के भीतर, गुरु के भीतर, अपने स्व के भीतर, तथा तत्त्वों सहित समस्त प्राणियों के भीतर देखना चाहिए — उनमें ऐसे विद्यमान मानो उन्होंने प्रवेश किया हो, यद्यपि सर्वव्यापी होने के कारण वे वस्तुतः कभी प्रवेश नहीं करते। (SB 7.12.15)



जीवन की जो भी अवस्था हो, वही एक अभ्यास उसे पवित्र करता है: भगवान् को यज्ञाग्नि, गुरु, अपने स्व, तथा समस्त प्राणियों के भीतर विद्यमान देखना (SB 7.12.15)।

अपनी अवस्था के नियमों के अनुसार जीते हुए, और इस प्रकार जो जानने योग्य है उसे जानकर, ऐसा भक्त — चाहे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, या गृहस्थ हो — परम ब्रह्म को प्राप्त करता है:

एवं विधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ।

चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥

evaṁ vidho brahmacārī vānaprastho yatir gr̥hī caran vidita-vijñānaḥ paraṁ brahmādhigacchati

अर्थ: इस प्रकार जीते हुए — चाहे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, या गृहस्थ रूप में — और सच्चे ज्ञान का साक्षात्कार कर, व्यक्ति परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। (SB 7.12.16)

भगवान् को इसी रूप में क्यों पहचाना जाए — ज्वाला के रूप में, गुरु के रूप में, स्व के रूप में, तथा हर प्राणी के रूप में समान भाव से, ऐसे विद्यमान मानो प्रवेश किया हो, यद्यपि वस्तुतः कभी प्रवेश नहीं करते? क्योंकि चार आश्रम केवल जीने के चार ढंग नहीं हैं; वे चार पाठशालाएँ हैं जो आत्मा को इसी एक साक्षात्कार तक ले जाने के लिए बनाई गई हैं। अध्ययन, संयम, वन-जीवन, तथा अन्तिम संन्यास के नियम केवल “मैं यह शरीर हूँ” की पकड़ को ढीला करने के लिए हैं, जब तक भक्त यह न देख ले कि सदा से क्या सत्य था: भगवान् की उपस्थिति कभी किसी में प्रवेश करने पर निर्भर नहीं रही, क्योंकि वे पहले से ही समस्त वस्तुओं के आधार हैं, और साथ ही सदा, अखण्ड रूप से स्वयं ही बने रहते हैं। जो तपस्या इस दर्शन तक नहीं पहुँचती, वह अभी अपने ही लक्ष्य तक नहीं पहुँची (SB 7.12.15–16)।

वानप्रस्थ

फिर नारद ने प्रेमपूर्ण विस्तार से वानप्रस्थ का, वन को जाने वाले का वर्णन किया। सिद्धों द्वारा अनुमोदित नियमों का पालन करते हुए, ऐसा तपस्वी इस जीवन के पश्चात् सरलता से उच्च लोकों की ओर उठता है और, यथासमय, मुक्ति की ओर:

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसम्मतान् ।

यानास्थाय मुनिर्गच्छेदृषिलोकमुहाञ्जसा ॥ १७ ॥

vānaprasthasya vakṣyāmi niyamān muni-sammatān yān āsthāya munir gacched ṛṣi-lokam uhāñjasā

अर्थ: अब मैं वानप्रस्थ के लिए सिद्धों द्वारा अनुमोदित नियम बताऊँगा, जिनका पालन करके तपस्वी सरलता से ऋषियों के लोक को प्राप्त करता है। (SB 7.12.17)

वानप्रस्थ उसी पर जीता है जो प्रकृति स्वयं देती है — सूर्य से पके फल तथा अन्न, कभी कृषि-उत्पाद नहीं, और जब भी नया मिले तो पुराना संग्रह त्याग देता है। वह हिम, वायु, वर्षा, अग्नि, तथा सूर्य को सहता है, केवल अपनी यज्ञाग्नि की रक्षा के लिए आश्रय लेता है। जटा तथा वल्कल-वस्त्र धारण किए, केवल कमण्डलु, दण्ड, तथा पूजा के उपकरण रखते हुए, वह वन में तप करता है, सदा सतर्क कि कष्ट उसके मन को विकृत न कर दे।



वानप्रस्थ सूर्य से पके फल तथा अन्न पर जीता है, तत्त्वों को सहता है, और वन में तप करता है, केवल कमण्डलु, दण्ड, तथा पावन पूजा के उपकरण रखते हुए (SB 7.12.17-22)।

समस्त वस्तुओं की अपने स्रोत में वापसी

अन्ततः नारद ने उस वानप्रस्थ का वर्णन किया जो, आयु या रोग से अपने धार्मिक कर्तव्यों में असमर्थ होकर, अन्तिम समर्पण की तैयारी करता है। यज्ञाग्नियों को अपने भीतर समेटकर तथा “मैं” एवं “मेरे” के भाव को त्यागकर, वह अपने शरीर तथा मन को, अंश-अंश, उन्हीं स्रोतों में लौटा देता है जिनसे वे आए:

आत्मन्यग्नीन् समारोप्य सन्न्यस्याहं ममात्मताम् ।
कारणेषु न्यसेत् सम्यक्सङ्घातं तु यथार्हतः ॥ २४ ॥

ātmany agnīn samāropya sannasyāhaṁ mamātmatām kāraṇeṣu nyaset samyak saṅghātaṁ tu yathārhatāḥ

अर्थ: यज्ञाग्नियों को अपने भीतर समेटकर, तथा “मैं” एवं “मेरे” के भाव को त्यागकर, विवेकी पुरुष को अपने शरीर-मन-संघात को उसके कारणों में भली-भाँति विलीन कर देना चाहिए, प्रत्येक अंश को उसके उचित स्थान पर सौंपते हुए। (SB 7.12.24)

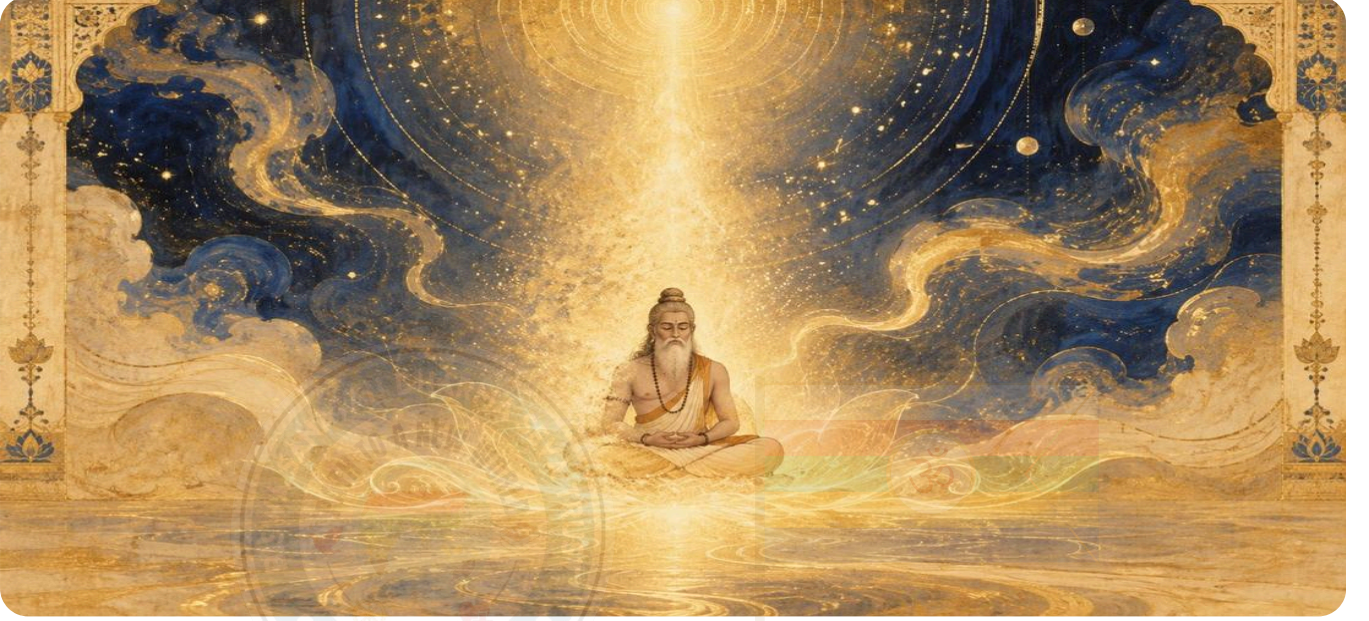
वह अपने शरीर के छिद्रों को आकाश में, अपने प्राणों को महावायु में, अपनी ऊष्मा को अग्नि में, अपने द्रवों को जल में, तथा अपने ठोस अंग को पृथ्वी में लौटा देता है; वह प्रत्येक इन्द्रिय तथा शक्ति को उसके अधिष्ठाता देवता को सौंप देता है, और अन्ततः स्व को, तीनों गुणों सहित, परम अव्यक्त में विलीन कर देता है। जब सब उधार लिए तत्त्व लौटा दिए जाते हैं, तो जो शेष रहता है वह है शुद्ध, अक्षर, अद्वय चेतना जो सच्चा स्व है — और, उसे जानकर, ऋषि शान्त हो जाता है, उस अग्नि के समान जो अपना ही ईंधन जलाकर धीरे से बुझ जाती है:

इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ।

ज्ञात्वाद्वयोऽथ विरमेद् दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥

ity akṣaratayātmānaṁ cin-mātram avaśeṣitam jñātvādvayo 'tha viramed dagdha-yonir ivānalaḥ

अर्थ: इस प्रकार स्व को अक्षर के रूप में, केवल शुद्ध चेतना शेष रहते हुए साक्षात्कार कर, अद्वय ऋषि शान्त हो जाता है — उस अग्नि के समान जो उसे पोषित करने वाले ईंधन के जल जाने पर शान्त हो जाती है। (SB 7.12.31)



"मैं" एवं "मेरे" के भाव को त्यागकर, ऋषि प्रत्येक तत्त्व को उसके स्रोत में लौटा देता है और शुद्ध, अक्षर स्व में विश्राम पाता है — शान्त, उस अग्नि के समान जिसका ईंधन समाप्त हो चुका है (SB 7.12.24-31)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अनुशासन आध्यात्मिक जीवन की नींव है। ब्रह्मचारी का संयमित, श्रद्धापूर्ण, सेवामय जीवन — पूजा, अध्ययन, भिक्षा, तथा संयम — आत्मा की प्रशिक्षण-भूमि है (SB 7.12.1-6)।
2. कामना का सामना सतर्कता से करना है, असावधानी से नहीं। अग्नि तथा ईंधन को हल्के में एक साथ नहीं रखा जाता; विवेकी सतर्क रहते हैं, यह जानते हुए कि इन्द्रियाँ कितनी सरलता से मन को हर लेती हैं (SB 7.12.9)।
3. जीवन की प्रत्येक अवस्था एक ही आन्तरिक अभ्यास साझा करती है। चाहे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, या संन्यासी हो, भक्त को भगवान् को अग्नि, गुरु, स्व, तथा समस्त प्राणियों के भीतर विद्यमान देखना है (SB 7.12.15)।
4. समस्त ईमानदार मार्ग एक ही लक्ष्य तक ले जाते हैं। सही ढंग से तथा सच्चे ज्ञान से जिया जाए, तो चार अवस्थाओं में से कोई भी परम ब्रह्म तक ले जाती है (SB 7.12.16)।

5. यात्रा का अन्त एक आनन्दमय समर्पण है। प्रत्येक उधार तत्त्व तथा “मैं” एवं “मेरे” का हर चिह्न लौटाकर, ऋषि शुद्ध, अक्षर स्व में विश्राम पाता है (SB 7.12.24-31)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय को बीते हुए जीवन-मार्ग के नियमों की सूची के रूप में पढ़ना सरल होगा — गुरु के घर में ब्रह्मचारी, वन में तपस्वी। किन्तु बाह्य रूपों के नीचे, नारद कुछ कालातीत का वर्णन कर रहे हैं: स्व-इच्छा से स्व-अर्पण की ओर एक स्थिर गति। ब्रह्मचारी सेवा करना तथा संयम सीखता है; वानप्रस्थ लगभग कुछ भी न चाहना सीखता है; ऋषि अन्ततः पृथक् स्व के भाव को भी लौटाना सीखता है। और जो एक सूत्र उन सबमें बहता है वह है भगवान् को भीतर देखने का अभ्यास — उस अग्नि में जिसकी हम सेवा करते हैं, उस गुरु में जिसका हम सम्मान करते हैं, उस स्व में जो हम हैं, और हर उस प्राणी में जिससे हम मिलते हैं। वह दर्शन तपस्वियों के लिए ही सुरक्षित नहीं है। हम जहाँ भी खड़े हों, अपने छोटे कर्तव्यों को पूजा के रूप में धारण करना और अपने सम्मुख के लोगों तथा क्षणों में पहले से विद्यमान भगवान् को खोजना आरम्भ कर सकते हैं। जीवन की अवस्थाएँ अनेक हैं; आन्तरिक यात्रा एक है, और वह वहीं समाप्त होती है जहाँ हर आत्मा होना चाहती है: भगवान् में विश्राम।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, वही एक अभ्यास अपनाएँ जो नारद जीवन की प्रत्येक अवस्था को देते हैं: अपने दिन के भीतर पहले से विद्यमान भगवान् को खोजें। जब आप दीप जलाएँ, किसी गुरु या ज्येष्ठ का अभिवादन करें, या केवल अपने हृदय में ठहरें, तो शान्ति से स्वीकार करें कि भगवान् वहाँ सबके अन्तर्यामी रूप में निवास करते हैं, धीरे से दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर संयम का एक छोटा कर्म चुनें — एक अनावश्यक भोग को त्याग दें — और उसे अभाव के रूप में नहीं अपितु भीतर निवास करने वाले भगवान् को प्रेम के उपहार के रूप में अर्पित करें।

उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का द्वादश अध्याय यह प्रकट करता है कि जीवन की हर अवस्था — ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, या संन्यासी — अन्ततः एक ही यात्रा है: पकड़ से अर्पण की ओर, जब तक आत्मा और उसके भगवान् के बीच कुछ भी शेष न रहे। हम चाहे किसी भी आश्रम में हों, अनुशासन वही अनुशासन है, और लक्ष्य वही लक्ष्य है — परम ब्रह्म, जो उस एक भगवान् के रूप में साक्षात्कार होता है जो शान्ति से समस्त वस्तुओं में व्याप्त रहते हुए भी सदा स्वयं ही बने रहते हैं। किसी भी कर्तव्य को उनकी पूजा के रूप में जीना ही घर की ओर यात्रा आरम्भ कर देना है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, द्वादश प्रवचन, पृष्ठ 710–713।
- श्रृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom • Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।

- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-12-four-ashramas-stages-of-spiritual-life-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

